JANUARY, 2002

ह्रीं

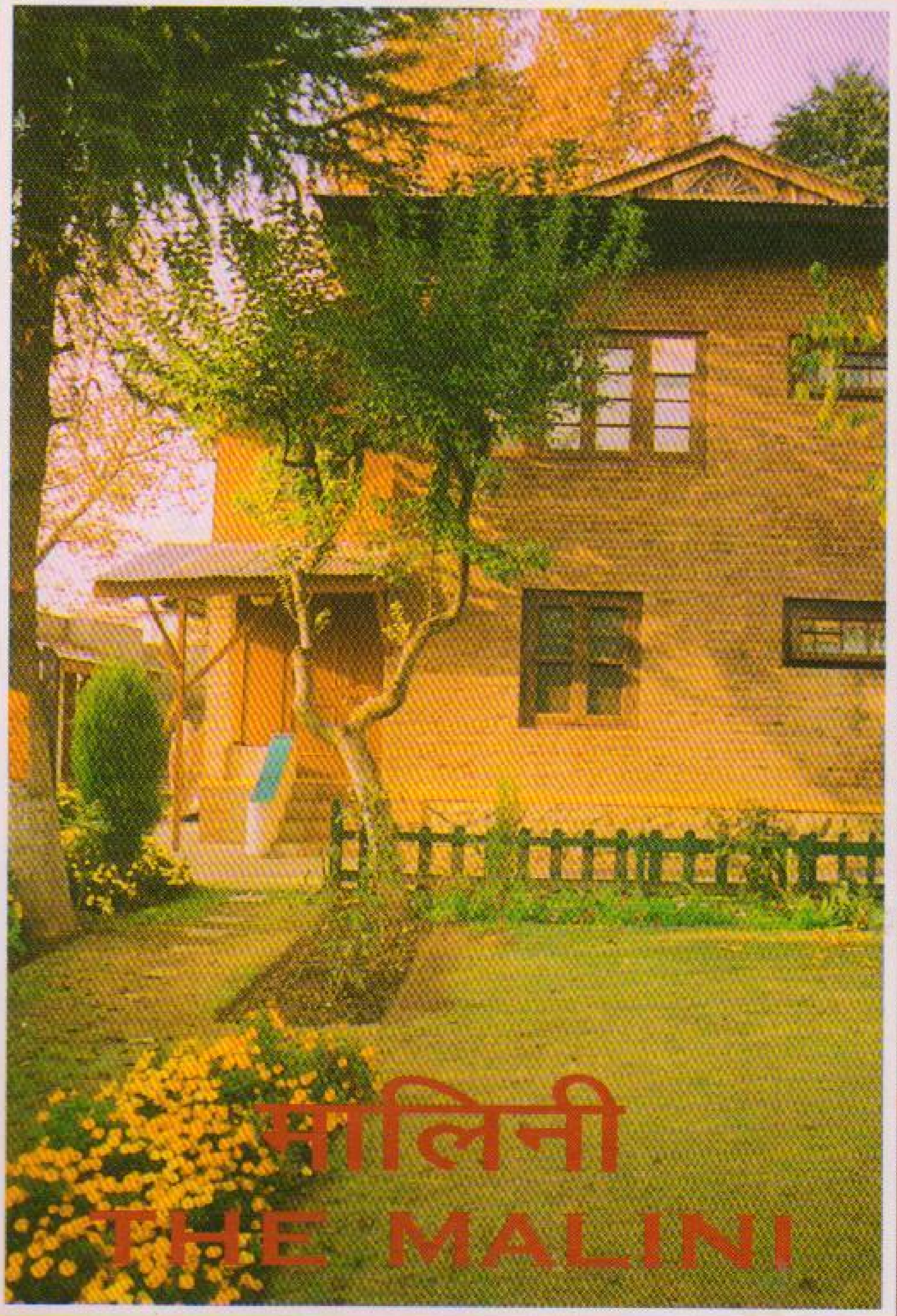

मालिनी
THE MALINI

ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Vol. VI NO. IV ISSUE XXVII
JANUARY, 2002

मालिनी

THE MALINI

Abhinavagupta about Mālinī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।
भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी॥

Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union with her all the treatises of non-dualistic order achieve the nature of divine potency.

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST
ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Board of Trustees :
Sri Inderkrishan Raina
(Secretary/Trustee)
Sri Samvit Prakash Dhar
Sri Brijnath Kaul
Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :
Sushri Prabhadevi
Prof. Nilakanth Gurtoo
Prof. Makhanlal Kukiloo
Sri Somnath Saproo

Sri Brijmohan
(I.A.S. Retd.) Co-ordination

Publishers :
Ishwar Ashram Trust
Ishber (Nishat), Srinagar
Kashmir.

Administrative Office :
Ishwar Ashram Bhawan
2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 002.
Tel. : 553179, 555755

Branch Office :
R-5/D Pocket, Sarita Vihar
New Delhi - 110 044
Tel. : 6958308
Telefax: 6943307

January, 2002
Issue Price : Rs.25.00
Yearly subscription : Rs.100.00
© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust
by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 328-1568, 327-1568

ॐ नमः परमसंविद् चिद्वपुषे

विषय सूची : Contents

	सम्पादक की लेखनी से		4
1.	Śiva Sūtras	*Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāja*	6
2.	Spiritual Realism	*Dr. B.N. Pandit*	11
3.	Utpaladeva's Sivastotravali – An Untold Story of Lord Siva	*Triloki Nath Dhar*	15
4.	विज्ञान भैरव - समीक्षात्मक अध्ययन	*प्रवचनकार– ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज*	23
5.	सूर्य अष्टोत्तर शतनाम	*सुश्री प्रभादेवी*	29
6.	शैव दर्शन के वातायन से	*प्रो० नीलकंठ गुर्टू*	31
7.	पूजा विषयक निर्देश		33
8.	श्रीतन्त्रालोकविवेके श्रीजयरथाचार्य पादैः स्तुताः योनिसमुद्भूताः जयाद्याः रुद्राः	*भाषानुवादक– प्रो० मखनलाल कुकिलू*	34
10.	From Ashram Desk	*Administrative office*	39

सम्पादक की लेखनी से

•

नववर्ष के आरम्भ में मालिनी का यह अंक प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। आशा है कि नव वर्ष में समस्त पाठक व भक्तगण स्व प्रकाश की रश्मियों के प्रभाव से प्रदीप्त होकर अनुग्रह की वर्षा से झूम उठेंगे। विविध शास्त्रों के अभ्यास से उनका संपूर्ण गुणवत्ता का स्रोत उमड़ पड़ेगा, अद्‌भुत योग संपदाओं से शरीर में लावण्य की अपार छटा प्रकट होगी। श्वास प्रश्वास की गति इष्टनाम के अजपाजप में संलीन रहेगी, परमानन्द की सुधाधारा निरन्तर आर्द्र करती रहेगी। शरीर, प्राण, मन तथा बुद्धि सब एक अवर्णनीय शान्ति, सुषमा एवं आनन्द की त्रिवेणी में अवगाहन करने लगेंगे। सांसारिक विषय सुख उस परमानन्द के भण्डार के सामने तुच्छ प्रतीत होने लगेंगे। परम प्रकाश की मधुर छवि से तृप्त हो जाने के कारण ये चर्मचक्षु बाहिरी क्षुद्रप्रलोभनों के शिकार नही बनेंगे। सद्‌गुरु ब्रह्म की विश्वमोहनी छवि को अपने मनमन्दिर में विराजमान करके अपने अस्तित्व को भी सदा के लिए भूल जायेंगे जिससे स्वयं प्रकाशमान को प्रकाशित होने के लिए प्रकाशान्तर की आवश्यकता नहीं पड़ेगी तथा संपूर्ण प्राणियों के रूप आपके ही स्वरूप तथा आपकी ही शक्ति से प्रतिभासित और आपकी ही चित् शक्ति से अनुप्राणित होंगे। हे करुणावरुणालय सद्‌गुरुदेव ! इस दुस्तर संसार सागर में निमग्न प्राणियों का उद्धार करने के लिए आप की कृपादृष्टि केवट का रूप धरकर स्वयं अपना चमत्कार दिखाती रहती है। हे शरणागत प्रतिपालक ! आप शरण में आये हुए दीन हीन प्राणियों की रक्षा करने में निरन्तर बद्ध परिकर हैं अतः यह नववर्ष हमें आप की करुणावर्षा से पग-पग पर शान्ति और शीतलता प्रदान करें। जय गुरुदेव।

हाल ही में राजधानी दिल्ली में विश्व पुस्तक मेले का आयोजन हुआ। ईश्वर आश्रम ट्रस्ट श्रीनगर कश्मीर ने पूर्ववत् इस वर्ष भी इस मेले में भाग लिया। स्मरण रहे कि ट्रस्ट का इस मेले में सम्मिलित होना लाभ की दृष्टि से न होकर केवल सद्‌गुरुमहाराज के दिव्य सन्देश को मेले के भागीदारों तथा लाखों दर्शकों व अध्येताओं तक पहुंचाना ही एकमात्र ध्येय रहता है। लोगों ने जिस समुत्साह से हमारे "बुक स्टाल" को देखा, सराहा वह प्रशंसनीय है क्योंकि हमारा पुस्तक बिक्रीकेन्द्र सारे मेले में एकमात्र ऐसा केन्द्र था जिसमें केवल 'कश्मीर शैवदर्शन पर हमारे सद्‌गुरु ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजी महाराज की रचनायें उपलब्ध थीं। देश के विख्यात अंग्रेजी भाषा के दैनिक पत्र "The Hindu" के

संवाददाताने हमारे पुस्तक बिक्री केन्द्र की सराहना करते हुए चार फरवरी २००२ के अपने समाचार पत्र में इस प्रकार के भाव व्यक्त किये–"The Ishwar Ashram Trust, Kashmir Srinagar, is selling rare books on Kashmir Shaivism by one of its most brilliant exponents—Swami Lakshman Joo. A magazine on the same subject is on display and can be bought for a song." The Hindu dated Monday 4th Feb-2002 Metro Plus Page II.

इसके अतिरिक्त मेले के कार्यालय से प्रतिदिन प्रकाशित होनेवाले "Fair Talk" नामक संक्षिप्त पत्रिका के तीन फरवरी २००२ के अंक में संवाददाता "श्री कुमार विक्रम" ने ईश्वर आश्रम ट्रस्ट के बिक्री केन्द्र को देखकर निम्नलिखित भाव प्रकट किये–"But the candid statement of Ishwar Ashram Trust, Kashmir explains the situation further, "our house brings books on Kashmir's Shiva philosophy and the response to our publication has been appropriate to our kinds of books". It seems that the reader does find out the books of his interests.—weekend or no weekend. *(Kumar Vikram)*

ईश्वर आश्रम ट्रस्ट के अधिकारी, जिस लगन से, आश्रम के हितों के ध्यान में रखकर जी जान से जुटे हैं वह सराहनीय है। आश्रम का सरिता विहार का दिल्ली केन्द्र अनेक आर्थिक संकटों के होते हुए भी इस केन्द्र के संचालकों की देखरेख में धीरे-धीरे प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। हमें आशा है कि शीघ्र ही हम अपने लक्ष्य को पूरा करने में सफल होंगे।

ईश्वर स्वरूप महाराज के भक्तजनों, सत्‌शिष्यों और साधकों को यह पढ़कर प्रसन्नता होगी कि ईश्वरस्वरूप की ९५वीं जन्मजयन्ती पर नौ मई २००२ को "मालिनी" का विशेष जन्मजयन्ती अंक प्रकाशित हो रहा है। अतः आप सब महानुभावों से सविनय निवेदन है कि ईश्वर स्वरूप के विषय में समीक्षात्मक लेख, विशेष स्मृतियां अथवा मधुर भक्ति रचनायें अथवा संस्मरण लिखकर मार्च महीने के अन्त तक भेजने का कष्ट करें। यदि कोई आकर्षक चित्र अथवा किसी घटना चक्र के साथ सम्बन्धित कोई प्रतिलिपि आप के पास सुरक्षित हो तो कृपया भेजने में हिचकिचाहट न करें।

नववर्ष की तथा आगामी शिवरात्रि महोत्सव की हार्दिक बधाईयां।

जय गुरुदेव !

प्रो० मखन लाल कुकिलू

ŚIVA SŪTRAS

with Vimarśinī Sanskrit commentary of Śrī Kṣemarāja

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāja

(continued from last issue)

आभ्य एव शक्तिभ्यः शिक्षोक्त संज्ञानुसारेण अन्तः पुंभूमौ नियत्यादिकञ्चुकत्वेन अवस्थानात् अन्तस्थाख्यान्प्रमातृभूमिधारणेन विश्वधारणात् धारणाशब्देन आम्नायेषु उक्तान्, तदुपरि भेदविगलनेन अभेदापत्त्या उन्मिषितत्वात् ऊष्माभिधानान् चतुरो वर्णानाभासितवती।

आभ्यः एव शक्तिभ्यः - by these very five energies of Lord Śiva, शिक्षोक्त संज्ञानुसारेण-according to names given by Sanskrit grammarians, अन्तः पुंभूमौ-pertaining to individual beings नियत्यादि कञ्चुकत्वेन अवस्थानात्-together with the नियति, विद्या, राग, कला, काल, माया these six coverings, (नियति-energy of remaining in a particular place) विद्या (energy of knowing limited knowledge) राग (energy of possessing attachment for limited things) कला (energy of limited acts) काल (energy of living in a particular time) माया (energy of illusion) अन्तस्थाख्यान्-four letters namely य, र, ल, व, they are named as अन्तस्थ because they remain inside the thought of an individual being or individual being possess these six coverings or energies inside. प्रमातृ भूमि धारणेन - by holding the consciousness of the प्रमाता the subjects, विश्वधारणात् - they hold the entire world, धारणाशब्देन - by the name of धारणा आम्नायेषु - in the scriptures, उक्तान् - are known in Śaiva point of view six coverings (कंचुक) in Tantras are nominated as धारणा। Without these time elements there is no question of the existing of individual being. धारणा means that it gives life to individual being. तदुपरि भेद विगलनेन - above māyā by subsiding of coverings of individual being, अभेदापत्त्या - indifferentiated perception comes in front of you, उन्मिषितत्वात् - then your's real nature comes out in existence, ऊष्माभिधानान् चतुरो वर्णान् आभासितवती - Sanskrit grammarians have nominated these four letters as ऊष्म अक्षर - श, ष, स, ह, because 'श' represents the state of शुद्धविद्या, 'ष' represents ईश्वर, 'स' represents सदाशिव and 'ह' represents शक्ति। ऊष्म means internal life comes again or due to the light of internal Prakaśa these four

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज

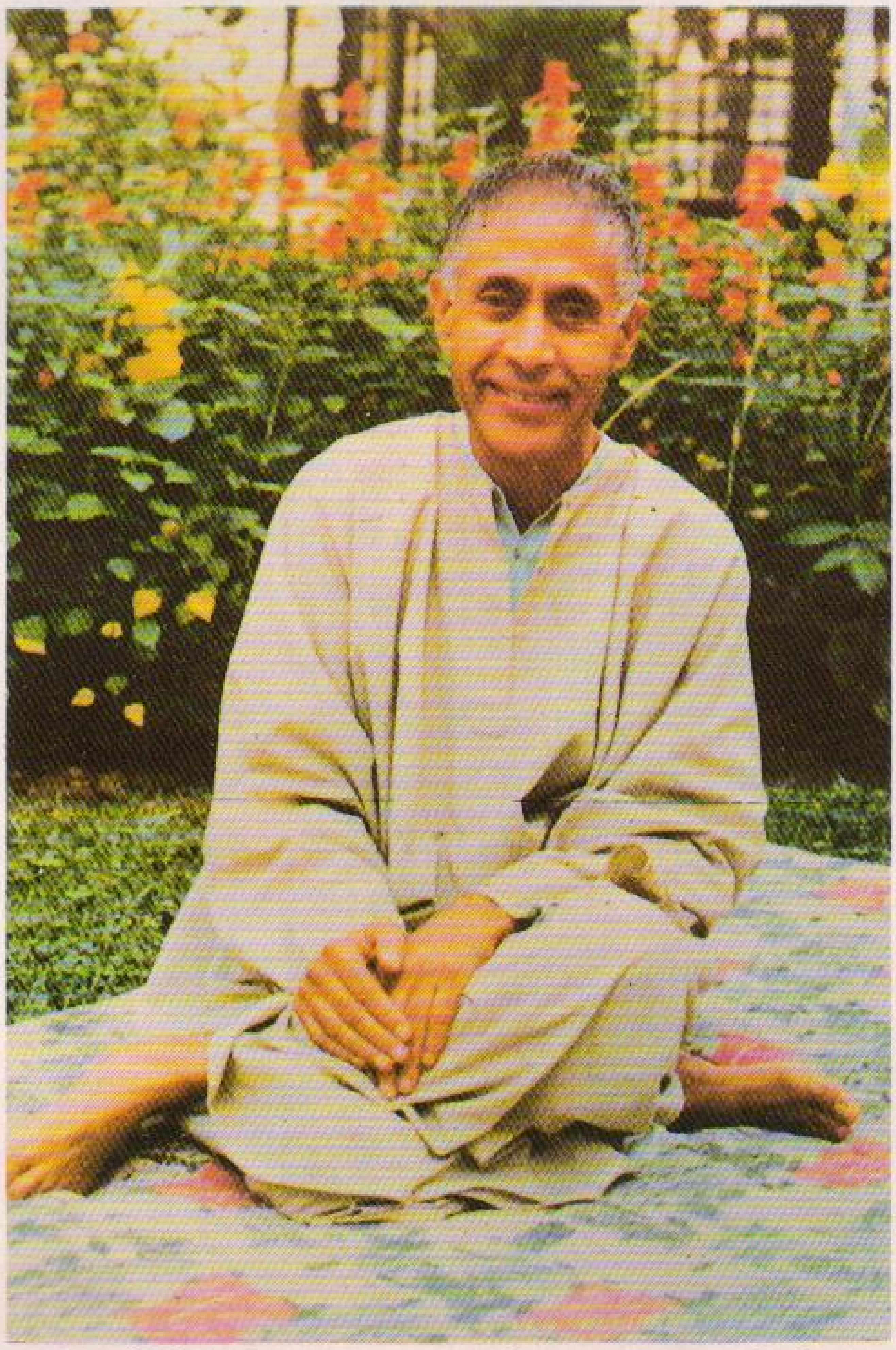

आविर्भावदिवस	महासमाधिदिवस
9-5-1907	27-9-1991

are called as ऊष्म अक्षर। This is called मातृका चक्र। There ends the world of Alphabets.

अत्र च अन्ते सर्वसृष्टि पर्यन्तवर्ति परिपूर्णममृतवर्णं प्रदर्श्य, तदन्ते प्राणबीजप्रदर्शनं कृतम्। तत् अनुत्तरशक्त्या आप्यायित अनाहतमयम्, इयत् वाच्य वाचकरूपं षडध्वस्फारमयं विश्वम् इति प्रत्यभिज्ञापयितुम्। अतएव प्रत्याहार युक्त्या अनुत्तर अनाहताभ्यामेव शिवशक्तिभ्यां गर्भीकृतम् एतदात्मकं एव विश्वम्; इति महामन्त्र- वीर्यात्मनोऽहं विमर्शस्य तत्त्वम्। यथोक्तं अस्मत् परमेष्ठि श्रीमदुत्पलदेवपादैः–

प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहंभावो हि कीर्तितः।
उक्ता सैव च विश्रान्तिः सर्वापेक्षानिरोधतः॥
स्वातन्त्र्यमथ कर्तृत्वं मुख्यं ईश्वरतापिच इति।

अत्र च अन्ते सर्वसृष्टिपर्यन्तवर्ति - in this world of alphabets at the end when the creation ends in its wholeness or fullness of supremacy, the creative world is found in the state of सदाशिव. That सदाशिव is represented by 'स' परिपूर्णममृतवर्णं प्रदर्श्य - this 'स' is called from Śaivī point of view as पूर्ण अमृतवर्ण (this is filled with nectar of supreme consciousness तदन्ते - at the end of अमृतवर्ण-'स', प्राणबीज प्रदर्शनं कृतम्-प्राणबीज - letter 'ह' is created. प्राणबीज is life of Śiva as that is शक्तिः। तत् - this universe, अनुत्तरशक्त्या - by cit Sakti, आप्यायित - brought to is its completion, अनाहतमयं - in the letter 'ह' - this state of शक्ति is called अनाहत - automatic energy of Lord Śiva is अनाहत शक्ति - that is 'ह'। It is not to be recited but it is experienced. It is automatic. When you recite it is not real, but in the beginning you have to recite. There is only experiencing of these letters not reciting. इयत् वाच्य वाचकरूपं षडध्वास्फारमयं विश्वं - इयत् - this is the वाच्य - objective side, वाचक - subjective side i.e.words and their onjects, षड् - six, three namely वर्ण, मन्त्र and पद on the वाचक or subjective side and कला, तत्त्व and भुवन on the वाच्य or objective side — means six, अध्वा - path, स्फारमयं - form of expansion, विश्वं—universe. इति प्रत्यभिज्ञापयितुं - to make this fact known to all. This is the history of whole universe from पृथिवी to शक्ति। For this knowledge the theory of मातृकाचक्र has been established. अतएव - therefore, प्रत्याहारयुक्त्या as per view of Sanskrit grammarian 'पाणिनि' "आदिरन्त्येन संहिता" i.e. you should not perceive the things one by one, see

what is in the beginning and see what is at the end. These too you have to combine. Thus you have to perceive the whole universe. This is called प्रत्याहारः This very theory applies to अहं परामर्श - the supreme I consciousness. Taking this प्रत्याहार theory अनुत्तर is first letter अ, अनाहत is last letter 'ह', combine these two but you can combine or unite them with अनुस्वार then it becomes अहं, so अहंपरामर्श the perception or conception of universal I. अनुत्तर अनाहताभ्यां एव शिव शक्तिभ्यां गर्भीकृतं एतदात्मकमेव विश्वं - it is combined or united by. अनुत्तर - शिव and अनाहत - शक्ति, एतदात्मकमेव विश्वं - of this union is this whole universe, इति महामन्त्र वीर्यात्मनोऽहं विमर्शस्य तत्त्वम् - this अहं or अहं परामर्श is the supreme मन्त्र in our school of thought. यथोक्तं अस्मत् परमेष्ठि श्रीमदुत्पलदेवपाद - this has been said by उत्पलदेव my great grand master—i.e., the same state of Śiva has been explained by उत्पलदेव in his book namely अजडप्रमातृ सिद्धिः - प्रकाशस्य आत्मविश्रान्ति etc. - whatever is perceived it is प्रकाश - whatever you feel, smell, touch or taste that is प्रकाश, carrying it to your own nature and sentencing or establishing you to that point of self all what you have perceived through all these organs. That is the state of अहंभावः - the universal I. This establishment of universal I is called स्वातन्त्र्य। It is called all action, and it is called all universal glory of Lord Śiva.

तदियत्पर्यन्तं यन्मातृकायास्तत्त्वं तदेव ककार सकार प्रत्याहारेण अनुत्तर विसर्ग संघसारेण कूट बीजेन प्रदर्शितमन्ते, इत्यलं रहस्य प्रकटनेन।

तदियत् पर्यन्तं यत्मातृकायास्तत्त्वं - thus so far the secret of मातृकाचक्र has been explained. तदेव - that very thing प्रदर्शितमन्ते - has been shown at the end, कूटबीजे - by the 'क्ष' letter ककार सकार प्रत्याहारेण - by uniting 'क' and 'स', अनुत्तर विसर्ग संघट्टसारेण - by essence of अनुत्तर i.e. क, and विसर्ग i.e. स. There are three worlds—subjective world, objective world and cognitive world. They are situated in objective world which now unaware of subjective and cognitive world. How can you handle three worlds of having different nature अनुत्तर (अ) subjective world, अनाहत - (ह) objective world and अनुस्वार cognitive world. First we have to extract subject from subjectivity and insert that subject with objectivity. Extract the object from real objectivity and insert that with inferior objectivity that is 'ह'।

Supreme subjectivity is found in अनुत्तर and objectivity in अनाहत। Inferior subjectivity is found in 'क' and inferior objectivety in 'स'. Then unite them, this क and स will be 'क्ष' "कष संयोगे क्षः" as per Sanskrit grammar rule. This 'क्ष' is कूटबीज, means mysterious or highest. It is that which has not come from real energy. इत्यलं रहस्य प्रकटनेन - so it is enough of expressing secrets.

एवंविधायाः - न विद्या मातृका परा। इत्याम्नाय सूचित प्रभावाया मातृकायाः संबन्धिनश्चक्रस्य - प्रोक्तानुत्तर आनन्द इच्छादि शक्ति समूहस्य, चिदानन्दघन स्वस्वरूप समावेशमयः सम्यक् बोधो भवति। एतच्चेह दिङ्मात्रेण उपटङ्कितम्। विततं तु अस्मत्प्रभुपादैः श्री परात्रिंशकाविवरण तन्त्रालोकादौ प्रकाशितम्। उक्तं च श्रीसिद्धामृते-

सात्र कुण्डलिनी बीज जीवभूता चिदात्मिका।
तज्जं ध्रुवेच्छोन्मेषाख्यं त्रिकं वर्णास्ततः पुनः॥
आ इत्यवर्णादित्यादि यावत् वैसर्गिकी कला।
ककारादि सकारान्तात् विसर्गात्पञ्चधा सच॥
बहिश्चान्तश्च हृदये नादेऽथ परमे पदे।
बिन्दुरात्मनि मूर्धान्ते हृदयात् व्यापकोहिसः॥
आदिमान्त्य विहीनास्तु मन्त्राः स्युः शरदभ्रवत्।
गुरोर्लक्षणमेतावत् आदिमान्त्यं च वेदयेत्॥
पूज्यः सोऽहमिव ज्ञानी भैरवो देवतात्मकः।
श्लोक गाथादि यत्किञ्चिदादिमान्त्ययुतं यतः॥
तस्मात् विदन् तथा सर्वं मन्त्रत्वेनैव पश्यति।
इति। एतत् च स्पन्दे -
सेयं क्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य पशुवर्तिनी।
बन्धयित्री स्वमार्गस्थ ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका॥
इत्यनेनैव भङ्ग्या सूचितम्॥ ७॥

एवंविधाया -thus, न विद्यामातृका परा - no knowledge is higher than Mātṛkā. इत्याम्नाय सूचित प्रमावायाः मातृकायाः सम्बन्धिनश्चक्रस्य - greatness of Mātṛkā has been indicated in scriptures. Mātṛkā cakra means, प्रोक्त - already explained, अनुत्तर–अ, आनन्द–आ, इच्छा–इ, आदि–उ, etc. शक्ति समूहस्य - group of energies, चिदानन्द घन स्वस्वरूप समावेशमयः - सम्यक् बोधोभवति - that wheel of मातृकाचक्र is made of चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान and क्रिया. In that wheel you

do not feel that these five energies are separate from Śiva. He is blessed with all these five energies. एतच्चेह दिङ्मात्रेण उटङ्कितम् - here in Śivasūtras, he explains this theory of मातृकाचक्र in these words vividly. विततं तु अस्मत्प्रभुपादैः श्रीपरात्रिंशका विवरण तन्त्रालोकादौ प्रकाशितम् - this has been explained thoroughly by my great master Abhinavagupta in the commentary of Parātriśikā and Tantrāloka also. उक्तं च श्रीसिद्धामृते - it is said in श्रीसिद्धामृत शास्त्र – सात्र कुण्डलिनीबीज जीवभूता. - that in the field of मातृका the supreme heroine is Kuṇḍalini. She is not life only of world of Mātṛkā, but the germ of Mātṛkā also चिदात्मिका - and filled with consciousness. तज्जं ध्रुवेच्छोन्मेषाख्यं त्रिकं वर्णा - from that Kuṇḍalinī, three letters namely अ, इ, उ get rise. In the system of letters Pāṇini also starts with अ, इ, उ, because अनुत्तर–अ is first letter, इच्छा–इ is second letter and उ–उन्मेष is third letter, ततः पुनः - from these three letters rise of all letters take place आ इत्यवर्णादित्यादि-आ takes rise from letter 'अ', यावत् - until, वैसर्गिकी कला - the flow of विसर्ग (energy of विसर्ग) takes rise ककारादि सकारान्तात् विसर्गात् पञ्चधा सच - From that विसर्ग rise of letters from क to स take place and that is five-fold. Rise of Kuṇḍalinī's, bliss starts from heart in five places. First place is हृदये - heart. It is every where that awareness is heart, it is consciousness, second is नादे - soundless sound is called नाद it is not produced, it takes place, third is परमेपदे - in the supreme state, fourth is बिन्दुरात्मनि - in the supreme void or between the two eyebrows and fifth is मूर्धान्ते - in sahasrāra (a thousand petalled lotus). बहिश्चान्तश्च - in external world and in internal world, हृदयात् व्यापको हि सः - this परामर्श of thoughtless I or I consciousness pervades all the five states of body and the world. In external state it is in universe. In internal state it is in body, in Nāda, in Supreme state and in voidness. आदिमान्त्यविहीना स्तु मन्त्राः स्युः शरदभ्रवत् - if this secret of Mātṛkā is not realized all recitations of Mantra are useless just like heap of clouds of Autumn go rainless. गुरोर्लक्षणमेतावत् आदिमान्त्यं च वेदयेत् - the qualification of master is only this that he makes one realize that आदिम - the first अनुत्तर-अ and अन्त्यं - the last अनाहत-'ह' and how to combine it. पूज्यः सोऽहमिव ज्ञानी भैरवो देवतात्मकः - that master is to be adored as people worship Lord Śiva. You must not

consider that kind of master an ordinary being.

श्लोकगाथादि यत् किंचित् आदिमान्त्ययुतं यत:

तस्मात् विदन् तथा सर्वं मन्त्रत्वेनैव पश्यति - when once you realize the reality of मातृकाचक्र then whatever you do in your routine life that is filled with universal consciousness i.e. अहंपरामर्श means आदिमान्त्ययुतं।

एतत् च स्पन्दे - this has been said in Spanda also —

सेयं क्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य० this energy of action of Lord Śiva in His individual state of life or existing in the fettered is a binder and the same when realized as forming a path to the reality secures the Supreme power.

(to be continued)

SPIRITUAL REALISM

Dr. B.N. Pandit

(continued from last issue)

The phenomenon enjoys an absolutely true existence in the pure and absolute consciousness alone. Its existence in Māyā is simply a manifested one. Manifestation is termed as Ābhāsa. The whole phenomenon consists of ābhāsas in Śaivism. Besides, as discussed above, we deal only with such objects in our knowing and doing which become manifest in our knowledge by the means of our ideation. Therefore the ideation itself appears in the form of all objects. Ideation is a sort of manifestation or ābhāsa. Therefore the whole objective existence consists of *ābhāsas*. This is that *Ābhāsa-vāda* of Kashmir Śaivism which is some times taken by some scholars as idealism. Such scholars forget the above mentioned views of the great authors of Śaivism in this regard. Objective entities, thought consisting of manifestation and ideation, are in fact real because of their utility, their constant existence in past, present and future and their being the common targets of the knowledge and action of all beings. Utpaladeva asserts that the ideas of action, relativity, generality, compound

substances, space, time etc. have all of them a real existence because of their being constantly existent and full of utility. Thus says he :

Kriyā-sambandha-sāmānya-dravya-dik-kāla-buddhayaḥ; Satyāḥ sthairyopa yogābhayām ekānekāśraya mataḥ. (I.Pr.II-0-1)

All the tattvas from Sadāśiva to earth are Ābhāsas and even then are not false like the sons of barren women. These are real and have to be taken as real in accordance with the pragmatic view of Kashmir Śaivism. Besides, being ever existent inside the absolute reality, and shining there in the form of pure I-consciousness, these cannot be taken as unreal. Their existence in Paramaśiva in the form of His divine potency is their absolute reality. It is only their objective manifestation which is a creation and which has a beginning and an end but even then such reality though a *Samvṛtisatta*, is a reality as asserted by Abhinavagupta (I.Pr.V. II. ii–4). The absolute reality of all phenomena is thus a spiritual reality in accordance with which these exist eternally within the divine potency of Paramaśiva. Since the stages of Vidyā and Māyā are the extrovertive reflection of Śakti, and since Śakti is an absolute reality, all phenomena are to be taken as real by us who also appear in the field of such Ābhāsas. That is the realism as established in the Śiva monism of Kashmir and has on its such character been termed here as spiritual realism.

Such realism is quite different from the realism of Nyāya-Vaiśeṣika, Sāmkhyayoga and Sarvāstivāda. Nyāya-Vaiśeṣika propounds a theory in accordance with which all matter in the form of atoms is to be accepted as an eternally real substance existing outside the knowing subject, his I-ness and his understanding. That is a type of gross materialistic realism to which Kashmir Śaivism does not agree, Śaivism counts even atoms as created elements and does not see such material realism as an absolute fact. It is taken just an outward manifestation of the exact reality. Atoms etc. do not exist outside the light of consciousness. A comparatively subtle material realism is propounded in Sāmkhyayoga, undiversified objective existence, containing the whole phenomenal existence in an unmanifest form, has been accepted there as an eternally existent reality. It is basically a subtle substance that takes the forms of all the instrumental and objective elements that constitute the universe. Kashmir Śaivism accepts both the princeples of Atoms and Mūlaprakṛti, but does not take them as realities existing apart from I-consciousness. It propounds a theory in accordance

with which both such entities are merely some outward manifestations of the divine power of the Absolute I-consciousness appearing as Ābhāsas at the different stages of the divine play of the self-extroversion of that I-consciousness.

Sautrāntika and *Vaibhāsika* schools of Buddhism propound a theory of two independent realities flowing concurrently. Such realities are :

1. Ever changing currents of momentary Vijñāna or consciousness appearing as *citta* or the psychic apparatus and (2) Such currents of momentary matter becoming evident in the light of *Vijñāna*. Citta goes on appearing momentarily in its different states and matter moves on in the form of momentary material entities. Both of them flow independently but go on cooperating with each other. The Vijñānavādins refute such theory of independent existence of matter and material substances and propound a theory in accordance with which the material existence is a mere outward manifestation of mental idea appearing in the manner of dreams on the basis of past impression lying in the currents of minds. Kashmir Saivism agrees with Vijñānavādin in refuting the *Bāhvārtha-vāda*, the theory of the real existence of matter outside and independent of mind. But it does not take it like a dream and does not agree with the *Vijñāna-vāda* in such respect. As already discussed, it propounds a theory called Ābhāsavāda, the theory of manifestation in accordance with which all phenomena are the ābhāsas of the reflections of the divine powers of the absolute I-consciousness brought about by its free and playful will that is its basic and essential nature known as its Godhead. A reflection can not be said to be non-existent. It is therefore a reality. But it is not an absolute reality but a mere manifestation or ābhāsa. The universal reflection is not the reflection of any mental idea of any being, because ideas rise in their minds while the universe is basically the manifestation of the powers of pure I-consciousness shining at a stage that precedes the manifestation of mind and mental apparatus. The absolute I-consciousness, being charged with the stir of spanda, manifests simple this-ness at the stage of Vidyā. Such this-ness appears as an entity different from I-ness at the next stage of the play of extroversion and such stage is called Māyā. Māyā, being goaded by Lord Anantanātha, spands itself into five kañcukas, the tattvas of limitation with which the finite I-consciousness is reduced to utter finitude and appears as the puruṣa of

the Sāmkhya philosophy and his limited objective element of this-ness starts to shine in the form of prakṛti, the cosmic energy. That energy, being goaded and directed by Lord Śrīkaṇṭhanātha, undergoes change or pariṇāma and becomes transformed into instrumental and objective tattvas including mind. Nothing is thus created and nothing is destroyed. Everything becomes manifested through as evolutionary transformation of the basic insenscient *tattva* called Mūlaprakṛti and every thing becomes dissolved into it through an involutionary transformation. The element of Sāmkhya realism to such extent has been accepted in the Śaivism of Kashmir but it asserts that firstly Mūlaprakṛti is directed and driven to such two faced transformation Śrīkaṇṭhanātha secondly, both puruṣa and prakṛti are the tattvas of creation manifested in such form by Lord Anantanātha; thirdly, the basic creation this-ness is the objective manifestation of the creative power of the absolute I-consciousness brought about by such consciousness through its extrovertive play of the outward manifestation of its divine powers. The objective existence is thus a reality at all the levels from pure Śakti to the gross objective phenomena in this universe. The same phenomena appear objectively in the universe which are already existent in the pure and absolute consciousness in the form of its divine spiritual power known as its Godhead. That is the spiritual realism of the monistic Śaivism of Kashmir. It is sufficiently because a perfect Śivayogin sees God and God alone in each and every phenomena. But Kashmir Śaivism is sufficiently different form the patheism of west. Firstly, the Śivayogin see God as such absolute consciousness which transcends the whole phenomenal existence while pantheists do not agree with such principle of absolutism. Secondly, do not accept any transformation of God into phenomenon but take it as a mere reflectionary manifestation of His divine powers while pantheists believe that God becomes actually the phenomenal universe and is to be realised as such. Vaiṣṇava pantheists propound the theory of a personal God living in a divine abode but Śaivamonism takes such God as a deity created by Paramaśiva and takes the Almighty God as absolute I-consciousness containing everything in Him in the form of His devine Godhead which is identical with Him. It propounds thus of such realism which may not stand the test of western philosophy but which is well established on the basis of the superior psychological revelations attained by Śivayogins in the state of intuitional experiences termed as Darśana.

UTPALADEVA'S SIVASTOTRAVALI
– An Untold Story of Lord Siva

—Triloki Nath Dhar

The author, Sh. Trilokinath Dhar, is a resident of Safakadal Srinagar. He was an ardent devotee of our Sadguru Maharaj. He used to meet our Lord often on the days other than Sunday. The learned author is a spiritually advanced person and an author of many books such as "Concept of 'I'," Spiritual fiction – A bunch of short Romances" Mata Rupa Bhawani, Mata Vaishno Devi, Cascades, etc.

We are grateful to the author for writing this article for our Malini journal. The article is self evident of the author's deep study of the book "Shivastotravali." The crux of Kashmir Shaivism has been underlined by the author in the very beginning by rendering the translation of the verse:—

त्वमेवात्मेश सर्वस्य सर्वश्चात्मनि रागवान्।
इति स्वभावसिद्धां त्वद्भक्तिं जानन् जयेत् जनः॥

The chief peculiarity of "Bhakti"—devotion has been vividly depicted and explained as such:—

न योगो न तपो नार्चाक्रमः कोऽपि प्रणीयते।
अमाये शिवमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका प्रशस्यते॥

Professionally an A.I.R. Broadcaster the author seems to be proficient in spiritual texts of the yore. We hope that the author will bedeck our 'Malini' by his peerless gems in future also.

Thousand salutations to Supreme Master, Utpaladeva, propounder of Pratyabhijna Philosophy, most worthy progenitor and guide of Kashmiri Pandits.

Sivastotravali of Utpaladeva is a hymn in praise of Siva, Supreme Indefinable Being, offered out of intense love, longing and pining. There are twenty hymns containing crystalline and nectarous verses free from every trace of confusing logic. With humility we try to bring out refined substance of the glorious and melodious hymns.

Is there anyone who has realized Siva without effort or means or method or meditation and is fully conscious of Siva's presence? Who is the first person in the history of mankind who attained Siva consciousness without effort. There may be some persons who attained Siva

consciousness but in point of time and space who was that. Such a person whether he existed in the past or is living in the present is worthy of adoration having attained Siva consciousness directly through the grace of Siva without having resort to traditional and time-honoured means of upasana. In the first verse of Sivastotravali Utpaladeva offers salutations to such a person. He says that everything exists because of Siva. Naught exists because of Siva. A devotee drunk with the wine of LOVE is in harmony under every fluxion and fusions. The greatest wonder is that though a Bhakta (a devotee) having fully realized that Siva alone exists yet remains blissful only in seeing Him as separate from him.

Siva is the creator and sustainer of self in every individuality and every being is attached to the self and love of self is creativity. Thus, a devotee sees Siva's love in the nature of being.

One may realize Siva in a unitary experience but the blessed devotee clearly sees Him amidst worldly activity also. Pleasure, pain and ignorance only sharpen a devotee's urge to attain to Supreme Siva.

Devotees have through depthful inquiry and direct experience realized that Siva is the ultimate root and cause of the universe. They perceive Siva in all states and circumstances proving false that a particular mode or stage is indispensable for communion with Siva. No system of worship or yoga or penance is prescribed for gaining access to Siva. LOVE alone is considered as the propeller and pathfinder on this journey.

It is a paradox that the mind which is at the root of all suffering but when saturated with divine love fully enjoys the ultimate bliss of liberation.

Salutations to Siva's power which manipulates consciousness variously as sun, moon, stars, rest, motion, creation and preservation.

Obeisance to Siva whose body radiates sacred glow having been smeared with the holy ashes of the blazing Universal Fire in which entire universe (with galaxies) falls as oblation.

Salutation to Siva's Fire - soothing and overflowing with immortality. Neverthless, horrific and hard to comprehend its destruction of the universe!

Homage to auspicious Fire of Siva which is so intense that the mol-

ten marrow of the three worlds falling as oblation into it set it unbearably ablaze.

Submissions to Siva - Supreme I-consciousness which makes individuality manifest as "I" and "I" cannot be located anywhere in the brain being above and beyond matter.

Thousand submissions to ineffable Siva, the only cause of the universe, and variously invoked by Bhaktas as Mahadeva, Rudra, Sankara, Maheshvara, and untainted while His will moves all multiple manifestations in the mire of material world. Verily He is miraculous beyond comprehension weaving magic web of numbers and spatial computations and Bearer of Supreme Beauty. He is one without a second and some devotees saw Him sporting with skulls in the company of realized souls. All orders, left, right or middle proceed from Him.

Obeisance to Siva, Lord of horrorsome, host of multiplex Shaktis working in orchestra for the functioning of the sense organs, exciting sensations and responses, verily beyond human mind to understand. These Shaktis make all sensations to rush in through the portals of senses for offering worship to Him. Verily Siva is the supremely satisfying immortal universal consciousness. Verily we find inbuilt script in every phenomenon within the four dimensional continuum of the universe. In biological world organisms develop according to genetic script. Siva rules without a script. A mere glimpse of Siva reveals indefinable unique sovereignty briming with immortality and absolute freedom. All praise to Siva, sustainer of worlds. Whenever a devotee feels isolated he seeks refuge in Siva who is beyond real and unreal.

Interplay of first, second and third person is mysterious but Siva being the prop of all persons is the greatest mystery.

Siva's sport is creation of Brahma, Vishnu and Indra and dissolution of the universe. Siva creates gods for creation, for preservation and for mental and vital functions but the sport of dissolution of the universe Siva retaineth exclusively to Himself.

A single glance of self illumined Siva with single digit horned crescent adorning His brow is ineffable in granting immortality.

Nothing exists beyond Siva. From inexpressible plane He appears

performing japa as is proven by the self existent rosary of alphabets.

Even after knowing Siva one gets deluded. Praised be Maya Shakti, Siva's consort.

Adoration to mind which confirms my existence and though restless runs after Siva, refuge of the lords of creation and Preceptor of the three worlds, consorting Supreme Shakti, the Mother of the Universe.

In what cosmologists define as the darkest period of the universe and termed Shiv Ratri by Utpaladeva is characterized by total absence of luminaries but in which Siva alone is copiously self-illumined with ineffable glow.

"Is there a recess in the Alps of mind where I would remain absorbed in supremely blissful uninterrupted contemplation of thee. Reveal thyself unto me from any state, objective or subjective, from within or without or from any object within or without.

"In a blissful posture satiated ever with enjoying whole universe as food cast thou a fleeting grace-showering glance on thine devotee. Even after having found thee and having realized that this universe is a glorification of my own self I would never relinquish bliss of LOVE for thee. Thou being without a second what else there is for me to crave for."

A creative writer creates a character which, though fictional, appears real to us and steals all our sympathies and we behave as if the character is real and if this character is struck with a tragedy we weep. What about creations' creator? We fail to understand what is unbreakable attachment to the objects of the senses and what is onepointed devotion to the Ultimate Reality, the source of all creative activity. To understand the difference between the two is only possible through the grace of Immortal Lord.

At all times and under all circumstances and in all activities Utpaladeva would like to remain immersed in the love of Siva.

Brain is the root and all the organs around the stem of vertebral column are like branches. The *jeeva* with I-consciousness and ego is mysteriously and invisibly tied to the *brain* and passes through wakeful state, dream state, dreamless state and deep dreamless state where ego is totally immersed in stupor without differential. All yoga consists in breaking

the thongs that bind jeeva to matter through material body. However, deep love for Siva inexplicabl leads to emancipation and the devotee is engulfed in the infinite and self-radiant universe of consciousness shorn of compartmentalization enabling a devotee to offer uninterrupted worship to Maheshwara, the Lord of the universe with beings. The path is through inward self which when revealed is remarkably respleadent and immortal. Stay in self is possible only by worshipping lotus feet of Lord Siva. Those devotees who have been touched by the soles of His feet realize sometimes through supernormal flashes the ocean of immortality transcending visible universe.

Siva is consciousness with which human thought on any plane cannot experiment with or explicate yet is supremely blissful.

In that supremely indefinable mansion of Siva's presence where Brahma (creator), Vishnu (sustainer) and Indra (artful controller of mental and vital) only remain waiting and have no authority to enter. The tiniest droplet of the nectar of communion would free one completely from the pathogen of duality enabling never to turn away from worldly pleasures.

Utpaladeva exclaims: "Let the intensity of my love transcend all limits and ram with irresistible force into Siva's presence breaking brackets. bonds and nails that bind." For elucidaton let us insert a set of queries and replies:-

"Self is self-existent and everything whether real or unreal exists because of self."

"Whether you exist or not the universe has been in existence."

"That is known to you because you exist. He and you exist because "I" exists. I-consciousness is the only reality. "I" knows truth as well as untruth."

"I-consciousness is preponderantly under delusive forces. Is it possible that "I" is completely shorn of delusive forces and directly without effort achieves full view of the Reality and real nature of physical and material forces."

"Sudden recognition through the grace of Siva leads to supreme state of knowledge and bliss."

"Can one by mere flash of Siva's grace understand the nature of Siva and origin and development and dissolution of the universe?"

"We had religious leaders who preached that the earth is flat and is the centre of the universe; sun moved round the earth; sky was a canopy of glass, on dooms day the canopy of the sky would crack and crumble like glass and pieces will fall on earth; the sun was created after earth; that procreative fluid flowed from backbone and ribs out through the privy organs. These ideas are contained in the holy books of such prophets as are worshipped by millions. If these prophets preached unscientific facts had they realized God."

According to Utpaladeva entry into real knowledge of Ultimate Reality is through self recognition which is not an easy affair but can be rendered easy through real and intense love for Siva. A lover should pronounce such a lament out of burning sensation of separation that Siva is compelled to reveal Himself.

All human beings have two eyes which transmit an image as electrical impulses to the visual cortex at the rear of the brain. The whole process of vision is very complex and so far not fully understood. The eyes make us to an object in three dimensions. However, Utpaladeva says that Siva has three Eyes. An accomplished practitioner of Yoga has also three eyes, two physical eyes and one invisible eye between two eye-brows where Kashmiri Pandits applied *tilak* in older times. Two physical eyes are not under our control. Similarly, the third eye of a yogi is not under his total control. Third eye enables a yogi to see in four dimensions. He can view things of the past, present or future. He can read the thoughts of a person. The power of the third eye of Lord Siva is infinite in its range.

Consciousness which transcends space and matter is itself the proof of Siva's existence. The nihilist by *negating* existence of Siva axiomatically proves His existence because nihilist cannot exist apart from Siva, the supreme source of consciousness and immortal beauty and bliss. For Siva's grace and touch Utpaladeva was ever pining.

Though individual self is indivisible from Siva yet is steeped in mortal characteristics. All objects are pulsating because of Siva's power. That person is surely exalted whose fore-head bears the mark of prostration.

Siva, three-eyed, crescent adorning forehead, Ganga entagled in flow-

ing locks; bearing awe-evoking skull, rosary, fearsome trident, symbolized by moon. His ineffable light transcnds all lights. His sport—creation of worlds.

Siva in the guise of an ascetic perplexes fools! Supreme wisdom is to view all existence as Siva's!

Though for a trice, even a common man sometime attains Siva consciousness.

Awefully Supreme self-conscious Siva has irresistably enveloped the whole universe as I-consciousness which triggers the tug in an individual between irreconcilables. Utpaladeva prays that he may be endowed with an iota of Supreme Being's Self-consciousness which would enable him to become Lord's worshipper forever.

Utpaladeva says, "The ways of the Supreme Beings are inscrutable. He has given me self which is His own self overflowing with the nectar of immortality but partaking of this wine is not dependent on my will"

Utpaladeva prays to remain ever drunk with the divine wine of intense love for Siva.

Ripeness of Love for Siva is liberation: The moment one is struck by the bolt of Love for Siva heralds liberation. But it is perplexing that dawning of love for Siva is not possible without His pleasure.

In the esoteric lore of Shaivism, Gauri's union with Siva is of great significance. Gauri is jeev's swamini. Without Gauri's pleasure one cannot attain to Siva.

Utpaladeva considers himself as the servant of Siva, Lord of the Universe. He wonders at the meekness of Siva that He is worshipped by servants and also attained.

Lovers of Siva having accepted the immense universe as the wherewaithall for offering worship are infused with alacrity as well as gravity.

Devas (gods) by churning *Ksheersagar* were rewarded with a pail of *amrit*. Likewise, a devotee absorbed in worship and bodily organs axially stirred up by blissful vibrations partakes of immortality, — conferring nectar.

Worship without any time-honoured procedure offered in mad love also bears the fruit of union.

Worship is celestial cow which not only nourishes with milk but also grants all boons.

Worship of Siva is a veritable treasure and bodily organs begin to effuse ineffable beauty.

Utpaladeva wanted all his organs to acquire full development for offering worship to Siva.

Individual self, store-house of multiplicity, is Siva's projection. Everything in the world proceeds from Him. Lord cannot become the subject of imagination of a puny individual. Lord's grace is all one should crave for. Utpaladeva says, "Siva, master of three *Shaktis* is my father and Bhawani is my mother with this realization I wander in the acme of ecstasy."

"Siva is light of all lights. His supreme intelligence holds universal sway proclaiming "all this I am". Salutations to His *Kriya Shakti*!"

Those individuals who, without renouncing the world are beholding everything as Siva's supreme light, are indeed blessed.

Truth vis-a-vis nihilism apart from individual does not exist. This explains Siva's sport of destruction, dissolution and disappearance when SIVA ALONE EXISTS.

Nought or unity does not apply to Supreme Siva. His *Iccha Shakti* creates everything. He is the source of I-consciousness endowed with the gift of comprehending the beautiful as well as the ugly.

"Siva didn't create anything other than bliss."

Take for instance a society. For a comfortable life for every individual and for the happiness of the whole every type of work is indispensable. From the work of a sweeper, a smith, a gardener, a farmer to that of an intellectual, a scientist, an educationist, a technologist, a builder, a writer - all are essential for the blissful life of the society. But distinctions arose through the ages branding one kind of work inferior to the other. Gradually societies broke up on the basis of profession, caste, creed and colour. Self-interest led to exploitation, sour conflict and confusion. Utpaladeva proclaims, "thou didst not make anything other than bliss yet sore conflict and disharmony prevail." He pays homage to Siva for being "the source

विज्ञान भैरव - समीक्षात्मक अध्ययन

प्रवचनकार–
ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज

(गतांक से आगे)

सर्व स्त्रोतो निबन्धेन प्राणशक्त्योर्ध्वया शनैः।
पिपील स्पर्श वेलायां प्रथते परमं सुखम्॥ ६६॥

(*अन्वय* - सर्वस्त्रोतोनिबन्धेन ऊर्ध्वया प्राणशक्त्या पिपील स्पर्श वेलायां शनैः परमं सुखं प्रथते॥)

प्राण और अपान आदि सारे वायुओं के निकलने के मार्गों को रोक देने पर, देह पर चींटी के सरकने से प्राप्त अनुभूति की तरह, साधक का चित्त अन्तर्मुख वृत्ति में रमकर परम आनन्द से भर जाता है॥

सर्वस्त्रोतो निबन्धेन –धीरे-धीरे सारे ज्ञानेन्द्रियों के प्रवाह को रोक देने पर।

स्त्रोत –ज्ञानेन्द्रियों का प्रवाह। पर इस प्रवाह का निरोध कैसे हो, इस विषय में कहते हैं कि–

प्राणशक्ति ऊर्ध्वया –प्राणों की गति के ऊपर उठने से,

पिपील स्पर्श वेलायां –देह पर चींटी के सरकने के समय। अर्थात् जब साधना के किसी क्षण में देह पर चींटी सरकने की सी स्पर्श की अनुभूति होती है तो समझना प्राण की जागृत शक्ति कार्यरत है। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो ज्ञानेन्द्रियों का स्त्रोत रोका नहीं जा सकता। पांचों ज्ञानेन्द्रियों अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध (सुनना, छूना, देखना, चखना, सूंघना) स्त्रोत का धीरे-धीरे रोधन केवल ऊर्ध्वक्रम से बहती हुई प्राणशक्ति से ही हो सकता है। प्राणशक्ति के निजी बलबूते पर नहीं। प्राणशक्ति की ऊर्ध्वगति से तात्पर्य है 'एकाग्रीभूत प्राणशक्ति,' वह प्राणशक्ति जो विचार रहित होती है या वैचारिक गति से अछूती रहती है। मध्यधाम स्थित प्राणशक्ति यहां अभिप्रेत नहीं है। यह मध्यधाम है बाह्य जगत् में, सुषुम्ना में नहीं। नाही मध्यनाड़ी में। यदि हम समाहित हों तो मध्यधाम हमारे में सर्वत्र है। एकाग्रीभूत प्राणशक्ति का तात्पर्य भी यही है। क्योंकि जब प्राणशक्ति में एकाग्रता हो तथा जब वह प्राणशक्ति पहले से ही सुषुम्ना में अर्थात् मध्यधाम में विद्यमान हो, वही प्राणशक्ति ऊर्ध्वक्रम से बहती हुई मानी जाती है। यह प्राणशक्ति सामान्य निजी क्षेत्र की न होकर मध्यधाम में कार्यशील होती है। यही वह सच्ची सांस है जिसे स्पन्दनहीन प्राण संचार कहते हैं। यह प्राणशक्ति है, प्राणकुण्डलिनी नहीं। एकाग्रता की स्थिति में तो यही मध्यधाम की बिन्दु है। क्योंकि जब मध्यधाम सर्वग-सर्वव्यापक हो

तभी कुण्डलिनी शक्ति उदित होती है।

ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज इस "पिपील स्पर्श-वेला" पर और प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि जब इस "पिपील स्पर्श वेला"—अर्थात् देह पर चींटी के सरकने से प्राप्त अनुभूति वेला, का समय आता है तो पैर के अंगूठे से चोटी के अग्रभाग तक चींटी के सरकने की सी अवस्था का अनुभव साधक को प्राप्त होता है जिससे—

परमं सुखं प्रथते —परमानन्द से योगी का मन भर जाता है। इस दशा में प्राणवायु मध्यधाम में नहीं जाती है अपितु वह तो वहीं सुस्थित होती है, सुषुम्ना में इसने पहले से ही प्रवेश किया होता है, अन्यत्र प्रवेश पाने की इसे क्या आवश्यकता है? यह जायेगी भी कहां। क्योंकि यह तो बाह्य जगत् में मध्यधाम संचारी है ही। बाह्य और आन्तरिक मध्यधाम एक है। स्वरूपलाभ की दृष्टि में यह विश्वमयी सुषुम्ना है। कुण्डलिनी शक्ति की धारणा के समय यह एकदम उदित होती है। वहां प्राणवायु का स्थान नहीं। यह एक साथ सारी इन्द्रिय वृत्तियों की प्रवहनशीलता है। विचार राहित्य तथा एकाग्रता के द्वारा प्राणशक्ति को एक समान रखने से यह स्थिति संभव हो सकती है। उदाहरण के तौर पर जब कोई सांस लेता है या छोड़ता है तो वह सांस लेने की या छोड़ने की प्रक्रिया को, किसी विचार के बिना अथवा किसी बाहरी गति का आभास दिये बिना, सम्पन्न करता है। इस क्रिया को प्राणशक्ति का बल कहते हैं। प्राणशक्ति, जिसे चित्तवृत्ति शक्ति कहते हैं, शक्ति में परिणत होती है। यही कुण्डलिनी शक्ति के उदय का साधन बनती है। यही तो "पिपीला स्पर्श" है और यह कुण्डलिनी शक्ति वहां सूक्ष्म रूप से और धीमी गति से उदित होती है अचानक या बिजली की तरह नहीं। यहां उस कुण्डलिनी से कुछ अभिप्राय नहीं जिसमें प्राणवायु का शोषण होता है। यद्यपि यह संचरणशील है पर इसका आधार मध्यधाम ही तो है। आंखें खुली हैं पर प्राणवायु की ओर कोई ध्यान नहीं। सांस लेते-लेते ही एकाग्रता प्राप्त होती है, प्राणवायु के स्पन्दन के बिना।

यह आणवोपाय है जो शाम्भवोपाय की ओर उन्मुख है। शाक्तोपाय में श्वासोच्छ्वास प्रक्रिया नहीं। श्वासोच्छ्वास प्रक्रिया का लेना देना तो आणवोपाय में ही है।

यहां यह बात स्पष्ट है कि इस प्रकार का एकाग्र्य उच्चकोटि के साधकों के लिए अभिप्रेत है। यह सर्वसामान्य ग्राह्य नहीं। पर इस प्रकार का आणवोपाय तो श्रेष्ठतम आणवोपाय है। जब एकाग्रता छा जाती है तो सारे ज्ञानेन्द्रिय उसी एक बिन्दु में समा जाते हैं। इस समा जाने को ही इन्द्रियों का निबन्धन कहते हैं। यही कारण है कि यह क्रम साधक को आणवोपाय से शाम्भवोपाय दशा की ओर ले जाता है।

पहले बिन्दु पर एकाग्रता साधो, फिर सांस लो, इसी को ऊर्ध्वतम प्राणशक्ति कहते हैं।

वह्नेर्विषस्य मध्ये तु चित्तं सुखमयं क्षिपेत्।
केवलं वायुपूर्णं वा स्मरानन्देन युज्यते ॥६८॥

(*अन्वय* – वह्नेः विषस्य मध्ये वायुपूर्णं केवलं वा सुखमयं चित्तं क्षिपेत्। (ततः) स्मरानन्देन युज्यते।)

साधक को चाहिए कि वह अपना मन वह्नि (प्राण) और विष (अपान) के मध्य में वायु पूर्ण अर्थात् प्राणायाम सहित अथवा प्राणायाम रहित आनन्द से पूर्ण रखे। उसके पश्चात् ही वह शिव और शक्ति संघट्टरूपी परमानन्द से सराबोर हो जाता है॥

इस धारणा में अब नई विधि की ओर संकेत है। यह शाक्तोपाय है।

स्वामी जी महाराज ने वह्नि और विष का अर्थ इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति किया है। इस आधार पर प्रथम पंक्ति का अर्थ है कि इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति के बीच में अपने मन को विश्रान्त करे, अर्थात् आपका मन इन दो शक्तियों में शान्त रहना चाहिए।

लौकिक अर्थ में रति उद्रेक "वह्नि" का द्योतक है और संभोग-सुखलीनता "विषं" से अभिप्रेत है। अपने मन को इन दो अवस्थाओं में विलीन रखे।

स्मरानन्देन युज्यते –साधक स्मरानन्द से तन्मयीभाव को प्राप्त करता है। स्मरानन्द शिवशक्ति संघट्टीभाव को जतलाता है और इस प्रकार साधक परमानन्द प्राप्ति से परिपूर्ण होता है। यहां स्मरानन्द, संभोग उद्भूत आनन्द का पर्याय नहीं है। यद्यपि शाब्दिक अर्थ तो इस शब्द का कामानन्द ही है पर कामानन्द तो आह्लाद है संभोग क्रिया का। पर प्रस्तुत प्रसंग में स्मरानन्द को उस अर्थ में नहीं लेना चाहिए। वास्तव में स्मरानन्द चिदानन्द अवस्था है। यह वह आनन्द है जो शिवशक्ति-संघट्ट या रुद्रयामलभाव है।

यह निमीलन दशा है। अविवाहित अवस्था में इच्छा और ज्ञानशक्ति के बीच में आपका मन सुशान्त रहता है। जब आप परिणय सूत्र में बंधे जाते हैं तो आप अपने मन को संभोग सुख के आरम्भ में और अन्त की भ्रान्त दशा में सुस्थित रख सकते हैं।

वह्नि –इच्छाशक्तिः।

विष –ज्ञानशक्तिः।

केवलं वायुपूर्णं वा –प्राणवायु वर्जित अथवा प्राणायाम सहित। यदि इस क्रिया के अनन्तर या इस अवस्था के पश्चात् भी एकाग्रीकृत बिन्दु से आप प्राणवायु को बाहर जाने देंगे तो आपने कुछ भी नहीं प्राप्त किया है। आपने तो अपने प्राणवाह को बरकरार रखना है, ऐसा करने से आप प्राणत्याग नहीं करेंगे यह कुम्भक नहीं है अपितु यह स्वचालित कुम्भक या स्वचालित निमीलन है।

(विष-वह्नि) ज्ञान और इच्छा का स्पष्टीकरण करते हुए स्वामी जी महाराज समझाते

हैं कि उदाहरण के तौर पर एक रुमाल को लो। रुमाल को हाथ में उठाकर यदि हम यह पूछेंगे कि यह क्या है? तो इस प्रकार का संप्रश्न 'इच्छा' है। यह एक रुमाल है—यह कहने पर तो इस प्रकार का उत्तर 'ज्ञान' है। इन दोनों व्यवहारों में आपने अपने मन को शान्त रखना है। आपका मन वहीं स्थिर रहे। इच्छा के समनन्तर ही आपका मन शीघ्र स्थिर होके ज्ञान की ओर न बढ़े, पर इच्छा के क्षेत्र से उसे बाहर आना चाहिए। यह इच्छा और ज्ञान के मध्य की दशा है। उदाहरण के रूप में आप इस ओर देखते रहिए। यहां दो चेष्टायें हैं। स्वामी जी महाराज कहते हैं कि देखिये इन दो अंगुलियों को मैं मिलाना चाहता हूँ। अभी ये एक दूसरे से सटी नहीं हैं। जब मैं इन दोनों अंगुलियों को मिलाने के लिए तैयार हूँ तो यही इस क्रिया का इच्छा क्षेत्र है। जब ये दोनों अंगुलियां एक दूसरे से मिल गईं तो यही इस क्रिया का ज्ञानक्षेत्र है। पर इस दूसरी दशा को सक्रिय न होने दे। आपने तो इस दशा से आगे जाना है पर दूसरी दशा को प्राप्त नहीं करना है। एक प्रकार से इसे गतिरोध कहते हैं। यह तो निरा आलोकन है इच्छा के अन्तिम छोर का तथा ज्ञान के पूर्व छोर का। यह तो निर्विकल्प और सविकल्प का मध्य बिन्दु है। ज्ञान का प्रथम स्पन्दन तो निर्विकल्प है, फिर सविकल्प का उदय होता है। दोनों की बीच की गति तो निर्विकल्प है पर अब हम सहज में ही उस निर्विकल्प की ओर जायेंगे तो वही शाम्भवोपाय है। निर्विकल्प तो विचार शून्यता है। यह खालिस आलोचन है। यह प्रथमाभास है अर्थात् मन में प्रथम आभासन की क्रिया है परन्तु इसे प्रथमाभास भी वास्तव में नहीं कह सकते हैं, क्योंकि यदि यह सत्यमेव प्रथमाभास होता तो यह निराधार होता। आपने तो यहां आश्रय भी लेना है। स्वामी जी महाराज कहते हैं कि इसीलिए उन्होंने इस धारणा को शाक्तोपाय के अन्तर्गत रखा है। क्योंकि एक साधक को पहले दो स्पन्दनों का आश्रय लेना है—इच्छा का आश्रय और ज्ञान का आश्रय। जहां इन दो में अन्तराल दीखे विश्रान्ति के लिए, वही शाम्भव है क्योंकि विश्रान्ति ही शाम्भवावस्था है। जहां तक इच्छा और ज्ञान के सहारे ही विश्रान्ति संभव होती है वहां शाम्भवावस्था का उदय नहीं हो सकता।

कई सन्तों की विचार धारा के अनुसार निम्नांकित दो श्लोक साधना के विभिन्न क्रम हैं। धारणा जगत् में इन दो श्लोकों का कोई स्थान नहीं क्योंकि ये दोनों श्लोक संभोग सुखात्मक प्रकृति के हैं:—

शक्ति संगम संक्षुब्ध शक्त्यावेशावसानिकम्।
यत्सुखं ब्रह्मतत्त्वस्य तत्सुखं स्वाक्यमुच्यते॥ ६९॥
लेहनामन्थना कोटैः स्त्रीसुखस्य भरात् स्मृतेः।
शक्त्यभावेऽपि देवेशि भवेदानन्दसंप्लवः॥ ७०॥

(*अन्वय* – शक्तिसंगम संक्षुब्ध शक्त्यावेशावसानिकं यत् ब्रह्मतत्त्वस्य सुखं तत् स्वाक्यं सुखं उच्यते। हे देवशि। लेहनामन्थना कोटैः स्त्रीसुखस्य भरात् स्मृतेः शक्त्यभावेऽपि आनन्दसंप्लवः भवेत्।)

पत्नी के सहवास से उत्तेजित हुई आनन्दशक्ति की अनुभूति का ध्यान कर साधक ब्रह्मानन्द अवस्था में अनुप्रवेश पाता है और इस अवस्था में प्रकट हुआ आनन्द अपना ही है, यह कहीं अन्यत्र से नहीं आता।

हे पार्वती! अधर मधु के आस्वादन, अंगों का पुनः पुनः मर्दन तथा विलोडन आदि अनेक प्रकार के हावभावों से उत्पन्न पूर्व अनुभव किये स्त्रीसुख का प्रयत्न से स्मरण करने पर स्त्री के पास न होने पर भी व्यक्ति को आनन्द का प्रवाह उमड़ पड़ता है।

श्लोक नं० ६९ संभोग सुख की प्रत्यक्ष प्रक्रिया है और श्लोक नं० ७० इसी प्रक्रिया की अपरोक्ष विधि है। श्लोक नं० ६९ शक्ति संगम में दोनों प्रेमियों के परस्पर मिलन का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

संक्षुब्ध शक्तिः –जब प्रेमिका उत्तेजित हो।

आवेशवसानिकम् –सहवास उत्तेजना के अनन्तर जो भी आह्लादानुभूति युगल में होती है वह आह्लाद ब्रह्मास्वाद सहोदर है।

यह सामान्य रूप में लोक प्रसिद्ध उपमा से यहां समझाया गया है कि किस प्रकार के आह्लाद की अनुभूति समाधि में होती है।

जब संभोग सुख की विभिन्न क्रियाओं आदि का चिन्तन करते हैं तो उसी प्रकार की सुखानुभूति की चमत्कृति का चर्वण समाधि में भी होता है। यह चिन्तन–

भरात्स्मृतेः –तीव्रतम रूप में किया जाता है, क्योंकि यदि तीव्रतमरूप में इस क्रिया का स्मरण न होगा तो परमाह्लाद की प्राप्ति भी अधूरी ही रहेगी।

शक्त्यभावेऽपि –यद्यपि पत्नी की समुपस्थिति नहीं भी होती है फिर भी तीव्रतम रूप में उस सहवास सुख की स्मृति से ही आनन्द प्राप्ति होती है। यहां परमाह्लाद की तुलना स्मरानन्द से की गई है क्योंकि समाधि दशा के आनन्द की सी अवस्था है। स्मरण रहे इसे वास्तविक प्रक्रिया नहीं समझना चाहिए।

उपरोक्त दोनों श्लोकों में किया गया वर्णन धारणाओं से जुड़ा हुआ नहीं है। पर कई विद्वानों की मान्यता है कि इन्हें भी धारणाओं के अन्तर्गत मानना चाहिए और उसी भाव से इनका भी अभ्यास करना चाहिए।

स्वामी जी महाराज का आदेश है कि इन श्लोकों को धारणाओं में गिनना नहीं चाहिए। आचार्य अभिनवगुप्त ने हालांकि इसे ब्रह्मसुख के साथ तुलना की है। ब्रह्मसुख

का आनन्द किस प्रकार का है? क्या समाधि में अनुभूत आनन्दावस्था ही वह अनुभूति है? अथवा क्या समाधि में स्मरानन्द सी आनन्दावस्था होती है? यह एक समानान्तर विशिष्ट उदाहरण है।

स्वामी जी महाराज पुनः इस सत्य का स्पष्टीकरण करते हैं कि आचार्य अभिनवगुप्त के समेत यद्यपि अन्य आचार्यों ने इन श्लोकों में वर्णित प्रक्रियाओं को धारणाओं के अन्तर्गत लिया है पर मैं उनके साथ इस पर सहमत नहीं हूँ। वास्तव में इन श्लोकों में इस सत्य का केवल चित्रण किया गया है कि किस प्रकार की परम सुख की प्राप्ति समाधि में होती है। प्रकृत ग्रन्थ में भी आगे इसी बात को स्पष्ट कर दिया गया है कि उपरोक्त प्रक्रियाओं को धारणाओं के अन्तर्गत नहीं लेना चाहिए। समानान्तर सुखानुभूति के कारण उपमा के द्वारा समझाने के लिए इनका यहां उल्लेख है।

शिवरात्रिः

यत्र सोऽस्तमयमेति विवस्वाँ-
श्चन्द्रमः प्रभृतिभिः सह सर्वैः।
कापिसा विजयते शिवरात्रिः
स्वप्रभा, प्रसर, भास्वररूपा॥
ॐ नमः शिवाय
शिवरात्री दियि जय
यति सिरिय तय जून तारख
सारिय छि सपदान लय
स्व प्रकाश-पान वुलसेम्च

शिवरात्री दियि जय।
यति अनि घट गाश हावान
समि-सोम प्रखटावान
यति नोन नन्यरावान
शिव-शक्तिमत् अद्वय।
तथ्य जगत आनन्द नगरियिमंज़ करहय
आरचर।
जय शंकर जय शंकर-शिव-शंकर भियि
हर।

— J. N. Koul 'Kamal'

(Courtesy Sh. Damodhar Nehru)

सूर्य अष्टोत्तर शतनाम

—सुश्री प्रभादेवी

ईसवी सन् १६६० की वार्त्ता है। हमारे प्रातः स्मरणीय आराध्यगुरुवर्य ईश्वर-आश्रम में अपने सिंहासन पर आनन्द-मग्न अवस्था में विराजमान थे। मैं तथा ब्रह्मवादिनी देवी शारिकाजी दायें बायें सतृष्ण नेत्रों से महाराज जी के दर्शन से लाभान्वित हो रहे थे। महाराज जी को प्रसन्न-वदन देखकर मैंने धीमे स्वर में बाल-सुलभ वाणी में कहा— आध्यात्मिक सूर्य की उपासना के विषय में तो आप ने हमें साम्बपंचाशिका पुस्तक पढ़ाई है और उस का मनन भी भली-भांति कराया है। किन्तु बाह्य-सूर्य की आराधना हम चाहें तो कैसे करेंगे। मेरी बात को सुनकर महाराज जी ने मुझे लेखनी और कागज लाने के लिए कहा। मैंने शीघ्रता से आज्ञा का पालन किया तो सर्वज्ञ गुरुदेव ने मुझे सूर्यदेव के १०८ नाम लिखवाये।

साथ ही कार्तिकेय, जिन्हें कुमार जी भी कहते हैं, ५१ नाम लिखवाये। लिखवाने के बाद आदेश दिया—इन्हें रोज प्रातःकाल पढ़ना चाहिये इससे मन प्रसन्न तथा शान्त रहेगा। गुरुवर्य की आज्ञा का पालन मैंने उसी दिन से किया।

सहृदय पाठकों के हितार्थ मैं सूर्य-देवता के १०८ नाम तथा कार्तिकेय जी के ५१ नामों को मालिनी में लिख रही हूं ताकि पाठक-जन इन नामों का प्रति दिन पाठ करने से अवश्य लाभान्वित होंगे ऐसा निश्चय है:—

सूर्य के १०८ नाम

१ सूर्यः, २ अर्यमा, ३ भगः, ४ त्वष्टा, ५ पूषा, ६ अर्कः, ७ रविः, ८ गभस्तिमान्, ९ अजः, १० कालः, ११ मृत्युः, १२ धाता, १३ प्रभाकरः, १४ पृथ्वी, १५ जले, १६ तेजः, १७ वायुः, १८ आकाशः, १९ स्वरूपं, २० सोमः, २१ बृहस्पतिः, २२ शुक्लः, २३ बुधः, २४ मंगलः, २५ इन्द्रः, २६ विवस्वान्, २७ दीप्तांशुः, २८ शुचिः, २९ सौरि, ३० शनैश्चरः, ३१ ब्रह्मा, ३२ विष्णुः, ३३ रुद्रः, ३४ स्कन्दः, ३५ यमः, ३६ वैद्युत् ३७ अग्निः, ३८ तेजस्पतिः, ३९ धर्मध्वजः, ४० वेदकर्ता, ४१ वेदाङ्गः, ४२ वेदवाहनः, ४३ सत्यं, ४४ त्रेता, ४५ द्वापरः, ४६ कलिः, ४७ कालः, ४८ काष्ठा, ४९ मुहूर्तः, ५० क्षमा, ५१ यामः, ५२ क्षणः, ५३ संवत्सरः, ५४ अश्वत्थः, ५५ कालचक्रः, ५६ विभावसुः, ५७ शाश्वतः, ५८ पुरुषः, ५९ योगी, ६० व्यक्तः, ६१ अव्यक्तः, ६२ सनातनः, ६३ कालाध्यक्षः, ६४ प्रजाध्यक्षः, ६५ विश्वकर्मा, ६६ तमोनुद, ६७ वारुणः, ६८ सागरः, ६९ अंशुः, ७० जीमूतः, ७१ जीवनं, ७२ अरिहा,

७३ भूताश्रयः, ७४ भूतपतिः, ७५ सर्वलोकनमस्कृत्, ७६ सृष्टा, ७७ संवर्तकः, ७८ वह्निः, ७९ सर्वादि, ८० अलोलुपः, ८१ अनन्तः, ८२ कपिलः, ८३ भानुः, ८४ कामदः, ८५ सर्वतोमुखः, ८६ शयः, ८७ विशालः, ८८ वरदः, ८९ सर्वसाधुः, ९० निषोचिता, ९१ मनः, ९२ सुपर्णः, ९३ भूतादिः, ९४ शीघ्रगः, ९५ प्राणधारकः, ९६ धन्वन्तरिः, ९७ धूम्रकेतुः, ९८ आदिदेवः, ९९ अदितिपुत्रः, १०० द्वादशात्मा, १०१ अरविन्दाक्षः, १०२ माता, १०३ पिता, १०४ पितामहस्वरूपः, १०५ मोक्षद्वार, १०६ देहकर्ता, १०७ मैत्रेयः, १०८ इन्द्रः।।

कुमार अथवा कार्तिकेय जी के एकपञ्चाशत् नाम

१ आग्नेय स्कन्दः, २ दीप्तिकीर्तिः, ३ अनामयः, ४ मयूर केतुः, ५ धर्मात्मा, ६ भूतेशः, ७ महिष-मर्दनः, ८ कामजित्, ९ कामदः, १० कान्तः, ११ सत्यवाक्, १२ भूवनेश्वरः, १३ शिशुः, १४ शीघ्रं, १५ शुचिः, १६ चण्डः, १७ दीप्तवर्णः, १८ शुभाननः, १९ अमोधः, २० अनधः, २१ रौद्रः, २२ प्रियः, २३ चन्द्राननः, २४ दीप्तशक्तिः, २५ प्रशान्तात्मा, २६ भद्रकृत्, २७ कूटमोहनः, २८ षष्ठीप्रियः, २९ ध र्मात्मा, ३० पवित्रः, ३१ मातृवत्सलः, ३२ कन्यभर्त्ता, ३३ विभक्तः, ३४ स्वहेयः, ३५ रेवतीसुतः, ३६ प्रभुः, ३७ नेता, ३८ विशाखः, ३९ नैगमेयः, ४० सुदुश्चरः, ४१ सुव्रतः, ४२ ललितः, ४३ बालक्रीडनकप्रियः, ४४ खचारी, ४५ ब्रह्मचारी, ४६ शूरः, ४७ शंखणोद्भवः, ४८ विश्वामित्रप्रियः, ४९ देवसेनाप्रियः, ५० वासुदेवप्रियः, ५१ प्रियकृत्।

ओं शम्

जय गुरुदेव

ओं

नमः शिवाय

शैव दर्शन के वातायन से

-प्रो० नीलकंठ गुर्टू

अन्वय—गुरु-शिष्य-क्रम अथवा पुत्र-पितृ-क्रम से, विच्छेदरहित रूप में, आगे-आगे विकसित होने वाली वंश-परम्परा को 'अन्वय' कहते हैं, संतान संतति, कुल-परम्परा इत्यादि शब्द भी इसी के नामान्तर हैं। प्राचीन सिद्धयुग में अवतरित त्रंबक नामी संकल्पसिद्ध गुरुजन से चली आती हुई और आज भी यथावत् विच्छेदरहित रूप में पशुसमुदाय के मलावृत हृदयों को प्रकाशित करती हुई वंशपरम्परा को त्रैयम्बकान्वय कहते हैं।

बृंहण—विश्वमयता एवं विश्वोत्तीर्णता दोनों स्तरों पर क्रमशः भुक्तिसम्बन्धी एवं मुक्ति सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूर्ण करनेवाले ईश्वरीय कृत्य को 'बृंहण' कहते हैं।

उद्-बुभूषा—बहिरंग विश्व में जन्म लेते और विकसित होते रहने की स्वारसिक इच्छा को 'उद्बुभूषा कहते हैं—उद्भवितुम् इच्छा उद्बुभूषा।

उज्जृम्भण—आत्मविकास की दिशा में निजी प्रखर साधना के बल से आगे पग धरते रहने की प्रक्रिया को 'उज्जंृभण' कहते हैं। उज्जृम्भण की प्रक्रिया में वर्तमान पदार्थ को उज्जंृभमाण कहते हैं।

अवतारण—परा अवस्था में केवल विशुद्ध संवित् रूप में ही वर्तमान रहनेवाले ईश्वरीय आगमशास्त्रों को, जनसाधारण का उपकार करने की कामना से, पश्यन्ती एवं मध्यमा के स्रोतों के द्वारा वैखरी-वाणी के स्तर पर उतारने की क्रिया को 'अवतारण' कहा जाता है। सर्वसाधारण जनसमुदाय केवल वैखरी-वाणी के द्वारा ही शास्त्रों का पठन-पाठन कर सकता है।

क्रोडीकरण—साधारण भाषिक प्रयोग में यह शब्द किसी पदार्थ को निजी गोद में बिठाने के अभिप्राय को द्योतित करता है, पारिभाषिक रूप में इस शब्द से—'किसी सिद्धपुरुष से प्राप्त किए हुए सद्ज्ञान को निजी हृत्-मंडल में सुचारु रूप में प्रतिष्ठित करने का अर्थ' अभिव्यंजित होता है।

सर्वंसह—ऐसे गुरु अथवा शास्त्र को 'सर्वं-सह' कहते हैं जो हठवादिता से काम न लेकर अपनी निर्धारित धारणाओं के अतिरिक्त दूसरे विचारकों के सत्-तर्कों को भी स्वीकारने में ईर्ष्या न करता हो।

अभिषिक्त—किसी भी धार्मिक संप्रदाय के साथ सम्बन्धित ऐसा व्यक्ति जिसके सिर

पर उसी सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार अभिमन्त्रित दीक्षाजल छिड़का गया हो।

तिरोधित्सुः—जिस पदार्थ को शीघ्रातिशीघ्र अपना स्वरूप छिपाने की तीव्र इच्छा हो—'तिरोधित्सुः' कहा जाता है—'तिरोहितुम् इच्छुस् तिरोधित्सुः।

कलन—किसी पदार्थ को देश-काल इत्यादि की इयत्ताओं में सीमित करना।

विसर्ग—बाहर विश्वमयता की ओर अधिक से अधिक उल्लसित होते रहने का स्वभाव, विसर्ग, कहलाता है।

सप्तदशी-कला—शुद्ध स्वातन्त्र्यशक्ति के आकार वाली अमाकला अथवा दूसरे शब्दों में अमृत कला।

मुख—चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया—इन पाँच शक्तिद्वारों को 'मुख' की संज्ञा दी गई है।

समापत्ति—पर अर्थात् लोकोत्तर समाधि को समापत्ति कहते हैं।

वेताल—हरेक शुभ कृत्य आरम्भ करने की वेला पर किसी-न-किसी विघ्न को उछालने वाले देवता-विशेष को वेताल कहते हैं। शास्त्र कहता है कि 'न हि कार्यारम्भे वेतालम् उत्थापयेत्।'

निराभास—परमेश्वर की वह अवस्था जिसमें वह शिव, शक्ति, सदाशिव इत्यादि सारी विकल्पपरंपराओं को छोड़कर विशुद्ध प्रकाशमय अवस्था में अवस्थित रहता है—निर्गत आभासेभ्यो निराभासः।

प्रसरण—शिव-तत्त्व से लेकर पृथिवी-तत्त्व तक के तत्त्वभाव में 'संचार' अर्थात् आरोह एवं अवरोह करने की क्रियाशीलता का नाम प्रसरण है।

उपकार—प्रत्यभिज्ञाशास्त्रों में इस शब्द से सर्वज्ञता, सर्वकर्तृता, पूर्णता, नित्यता, व्यापकता इत्यादि लोकोत्तर ईश्वरीय माहात्म्यों के बिल्कुल निकट पहुंचाने का अभिप्राय लिया जाता है।

प्रयोजन—जिस किसी अभिप्राय को अवश्य करणीय समझकर सब से पहले मानसिक अनुसंधान का विषय बनाया जाता है उसको 'प्रयोजन' कहते हैं।

संपदा—विश्वभर में पग-पग पर अनेक आकार प्रकारों में बिखरी पड़ी हुई नील एवं सुखरूपिणी प्रमेयसंपदा को ईश्वरीय संपदा कहा जाता है।

जन—प्रत्यभिज्ञादर्शन में किसी भी जन्म-मरण-शील प्राणी को 'जन' कहते हैं।

पूजा विषयक निर्देश

प्रो० मखनलाल कुकिलू

देवता का अभिषेक–आत्मशुद्धि प्रदाता, गन्ध–पुण्य प्राप्तिकर्ता, नैवेद्य–तृप्ति और आयुवर्धक, धूप–धनदाता, दीप–ज्ञानदाता और ताम्बूल समर्पण–भोग प्रदाता होता है। अतः स्नान, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य और ताम्बूल ये छः उपचार यत्नपूर्वक देवपूजा में अर्पित करें। भोग और मोक्ष को चाहने वाले साधक देवपूजा के अन्त में सर्वदा जप और वन्दना करके अपने को कृत-कृत्य करें। पर ध्यान रहे कि मानसिक पूजा सारी पूजाओं में से श्रेष्ठ है। मानसिक पूजा के समय प्रेम से उपरोक्त छः उपचारों का मन से ही प्रयोग करें। जप "जपस्तदर्थभावनम्" अर्थात् मन्त्राक्षरों का अर्थ चिन्तन तथा मन्त्रदेवता का बार-बार भावन, के आधार पर हो और नमन में संपूर्ण चित् विश्रान्ति हो। इस प्रकार की पूजा से यथेष्ठ फल प्राप्ति होती है। शास्त्रों में पूजा शब्द का अर्थ है "पूर्जायते अनेन इति पूजा" अर्थात् 'पूः' भोग-सिद्धि और फल सिद्धि को कहते हैं, जिस कार्य से यह सिद्धि संपूर्ण हो उसे पूजा कहते हैं। मनोभिलषित वस्तु प्राप्ति तथा पारमार्थिक ज्ञान ये दो सिद्धियां हैं। सकाम साधक को मनोभिलषित वस्तु तथा निष्काम साधक को पारमार्थिक ज्ञान की प्राप्ति पूजा से होती है। पूजा शब्द के ये दो अर्थ हैं। पूजा शब्द की सार्थकता इनकी योजना करने से होती है। दो प्रकार के बताये गये कर्मों में अच्छी तरह यदि काम्य कर्म का अनुष्ठान हो तो वह तत्काल फल देता है और नित्य नैमित्तिक कर्म कालान्तर में फल देते हैं। प्रतिदिन, एकपक्ष, एक मास और एक वर्ष तक लगातार पूजन करने से आचरित-कर्मों के फल की प्राप्ति होती है और वैसे ही उनसे पापों का क्रमशः नाश भी होता है। जो शुद्ध धन आदि से पूजा सामग्री को इकट्ठा करके हाथ आदि अंगों से नमस्कार आदि क्रिया करता हुआ इष्टदेव की पूजा में लगा रहता है वह क्रिया योगी कहलाता है। पूजा में लीन रहकर जो नपातुला भोजन करके अपनी बाहरी इन्द्रियों को तथा मन को भी जीतकर वश में करके परद्रोह आदि से दूर रहता है वह तपोयोगी कहलाता है। जो सदा शुद्धभाव से तथा काम आदि दोषों से रहित होकर शान्तचित्त से निरन्तर जप किया करता है वह जपयोगी कहलाता है। जपयोगी प्रायः जप करते-करते अपने आपको सर्वदा पाप-रहित बनाता है। उसे अज्ञान की निवृत्ति होती है और शिवज्ञान स्वयं ही प्रकट हो जाता है। शिवज्ञान से अपना विशुद्धस्वरूप प्राप्त होता है। शिवज्ञानी साक्षात् शिवस्वरूप ही है।

श्रीतन्त्रालोकविवेके श्रीजयरथाचार्य पादैः स्तुताः योनिसमुद्भूताः जयाद्याः रुद्राः

भाषानुवादक–
प्रो० मखनलाल कुकिलू

(गतांक से आगे)

श्रीतन्त्रालोक विवेक के बाईसवें आह्निक से सम्बद्ध "नन्दन" नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर 'प'–

दुर्वृत्तजन कुसंस्कृति संहरण व्यावृतास्यतां दधतम्।
देवममन्दं वन्दे वन्दनमानन्दनं जगताम्।।

दुर्वृत्तजन–दुष्ट व्यक्ति अर्थात् माया द्वारा भ्रान्त अधरदर्शनों के ज्ञाता व्यक्ति,

कुसंस्कृति–बुरे संस्कारों की विद्यमानता अर्थात् शैवशासन, जो सारे शास्त्रों की अपेक्षा श्रेष्ठतम शास्त्र हैं, उसे छोड़कर जो दूसरे अवर-शास्त्रों की बातों पर ध्यान देकर नैर्मल्य के स्थान पर कुसंस्कार कलंक पंक से कलुषित होते हैं।

संहरण–उन भ्रान्तियों को समेटने में
व्यावृतास्यतां–मुंह खोले खड़ा है
जगतामानन्दनं–सारे संसार को आनन्द प्रदान करने वाले 'नन्दन' नामक रुद्र को
अमन्दं–अत्यधिक
वन्दनं–वन्दनीय, स्तुत्य, देवं-नन्दन नामक रुद्र देव को।
वन्दे–प्रणाम करता हूं।

मैं आचार्य जयरथ अत्यधिक वन्दनीय उस 'नन्दन' नामक रुद्र देव को प्रणाम करता हूँ जो सारे संसार को आनन्द प्रदान करने वाले हैं तथा जो शैवागमों को छोड़कर अन्य निम्नकोटि के दर्शनों में आस्था रखने वाले भ्रान्त विद्वान् व्यक्तियों की मिथ्या प्रतीतियों को समेटने में कटिबद्ध खड़े हैं।

इस 'नन्दन' नामक रुद्र का मन्त्राक्षर 'प' है। जिसका अवहित मन से मनन करने से साधक विद्वान् को शैवागमों की श्रेष्ठता का परिचय प्राप्त होकर अन्य समस्त शास्त्रों में प्रकृति-पुरुष विज्ञान इत्यादि बातें अनुभवहीनता के स्तर पर कही गई बातें प्रतीत होती हैं।।

श्रीतन्त्रालोक विवेक के तेईसवें आह्निक से सम्बद्ध "सर्वतोभद्र" नामक रुद्र की

स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर 'फ'

आस्थाय भैरववपुर्निजाकृतेः संविभागेन।
विदधातु वः स भद्रं सर्वत इह सर्वतोभद्रः॥

आस्थाय—रखकर
भैरववपुः—भैरवस्वरूप
निजाकृतेः—अपनी आकृति में अथवा अपने आकार में
संविभागेन—अपने शरीर के अंग प्रत्यंग में
विदधातु—करें
वः—आप सब साधकों को
स—वह सर्वतोभद्र नामक रुद्र देवता
भद्र—स्वरूपसाक्षात्कार रूप कल्याण
सर्वतः—चारों ओर से
इह—इस शैव मार्ग में

भविष्यत् उत्कर्ष के प्रति जागरूकता, तथा ज्ञानविज्ञान अभिवृद्धि में तल्लीनता आदि आवश्यक गुणों की परीक्षा करलेने के पश्चात् अमृत अभिषेक विधि द्वारा गुरु अपना सारा अधिकार साधक को सौंपता है। उसके सारे पापों को धो डालता है। इस प्रकार उसके अंग प्रत्यंग में भैरवस्वरूप की स्थापना करता है।

'सर्वतोभद्र' रुद्रदेवता के प्रसाद से ही एक आचार्य 'सांसिद्धिक गुरु' पदवी को प्राप्त कर सकता है।

आकार-प्रकार तथा शरीर के अंग प्रत्यंग में भैरव स्वरूप समावेश से 'सर्वतोभद्र' नामक रुद्र सारे साधकों को स्वरूप साक्षात्कार रूप कल्याण सब ओर से करें॥

श्रीतन्त्रालोक विवेक के चौबीसवें आह्निक से सम्बद्ध 'भद्रमूर्ति' रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर 'ब'—

यः परमामृतकुम्भे धाम्नि परे योजयेदगतासुमपि।
जगदात्मभद्रमूर्तिर्दिशतु शिवं भद्रमूर्तिर्वः॥

यः—जो भद्रमूर्ति नामक रुद्र
परमामृतकुम्भे—सर्वश्रेष्ठ अमृतपूर्ण कुम्भ में
परेधाम्नि—अत्युत्कृष्ट स्थान
योजयेत्—मिलावे

अगतासुमपि–मृतप्राणी को भी
जगदात्म–जगत् स्वरूप
भद्रमूर्ति–कल्याणकारी रूप वाला
दिशतु–प्रदान करे
शिव–कल्याण
भद्रमूर्ति–भद्रमूर्ति नामक रुद्र
वः–आप सब को

त्रिक शास्त्र में कही गयी रहस्य अर्थ पूर्ण अन्त्य संस्क्रिया समयाचार का अतिक्रमण करने वालों के लिए मुक्ति का अन्तिम उपाय है। यही अन्त्य संस्क्रिया अन्त्येष्टि दीक्षा भी कही जाती है। इस अन्त्यकालीन संस्कार का मानव जीवन में बड़ा महत्त्व है। इसका सारा विधान शवशरीर पर ही किया जाता है। अन्त्येष्टि का अर्थ यही है कि इस विधि का आरम्भ अन्त्य मन्त्र वर्णों से और अन्त संहार क्रम से होता है। 'भद्रमूर्ति' नामक रुद्र की उपासना प्राणी के लिए अर्थात् इस रुद्र साधक के लिए मृत्यु के पश्चात् भी कल्याणकारी बनती है। क्योंकि अन्त्य संस्क्रिया का अधिष्ठातृदेवता यही भद्रमूर्ति नामक रुद्र कहा जाता है।

जो कल्याणस्वरूप वाला भद्रमूर्ति नामक रुद्र मृत्यु के पश्चात् भी अपने उपासक को परम अमृत धाम रूप शैवभाव में मिलाता है वही रुद्र आप सबका कल्याण करे॥

श्री तन्त्रालोक विवेक के पच्चीसवें आह्निक से सम्बद्ध 'शिवप्रद' नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर 'भ'-

भीममधिष्ठाय वपुर्भवमभितो भावयन्निव यः।
प्रभवति हृदि भक्तिमतां शिवप्रदोऽसौ शिवोऽस्तु सताम्॥

भीमं वपुः–भयकारी स्वरूप
भवं–संसार
अभितः–सब ओर से,
भावयन् इव–विभावक जैसा
शिवोऽस्तु–कल्याणकारी होवे
प्रभवति–विजयशील है
शिवप्रदः–शिवप्रदनामक रुद्र

यह शिवप्रद नामक रुद्र अशुद्ध या अति शुद्ध दोनों प्रकार के व्यक्तियों का कल्याण

अन्त्येष्टि के द्वारा करता है। इसी से मोक्ष की इच्छा रखने वाले साधकों का उद्धार होता है। इसीलिए यह अन्त्येष्टि–अन्तयाग या मृतोद्धारिणी प्रक्रिया के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस रुद्र की स्तुति तथा इसके मन्त्राक्षर 'भ' के सावहित होके मनन करने से साधक का पाशात्मक अंश नष्ट होता है और वह शिवीभाव में समाहित हो जाता है।

भीषण स्वरूप वाला, सारे विश्व का सब ओर से विभावक, भक्तों के हृदय का अभीष्ट, शिवप्रद नामक रुद्र सज्जनों के लिए कल्याणकारी और विजयशील होवे॥

श्रीतन्त्रालोक विवेक के छबीसवें आह्निक से सम्बद्ध "सुमनाः" नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर 'म'

भवति यदिच्छावशतः शिवपूजा विश्वलाञ्छनं विष्वक्।
विश्वं जयति स सुमनाः प्रपन्नजनमोचने सुमनाः॥

यदिच्छावशतः–जिस सुमनाः नामक रुद्र की इच्छा से,
विश्वलाञ्छनं–विश्वात्मा बनकर अथवा जगत् लक्ष्मभूत,
विष्वक्–सब ओर से,
सुमनाः–सुमनाः नामक रुद्र
प्रपन्नजनमोचने–शरणागतों का उद्धार करने में,
सुमनाः–शोभन मनवाला

इसमें "सुमनाः" शब्द का प्रयोग दो बार हुआ है। एक 'सुमनाः' का अर्थ सुमनाः नामक रुद्र है और दूसरे सुमनाः का अर्थ सुमनाः शोभनमन वाला है। श्रीतन्त्रालोक में कहा है कि "शेष वृत्तिर्जीवतामुपयोगिनी" अर्थात् जीवित लोगों के लिए "शेष वृत्ति" अतीव उपयोगी है, शेषवृत्ति का तात्पर्य है जीवित व्यक्ति के जन्म में बची हुई भोगवृत्ति। शैवागमों के अनुसार "दीक्षैव मोचयति उर्ध्वं शैवं धाम नयत्यपि" अर्थात् दीक्षा ही मोक्ष का साधन है और यही ऊर्ध्व शैव धाम तक साधक को पहुंचा देती है। यह दीक्षा दो प्रकार की होती है एक निर्बीज दीक्षा दूसरी सबीज दीक्षा। निर्बीज दीक्षा साक्षात् मोक्त्री (मोक्ष देने वाली) होती है, क्योंकि इसमें संस्कारों की शक्ति के अंकुरित होने का पूरी तरह से अभाव होता है। अतः इस साधक में कोई वृत्ति शेष नहीं रहती है। दीक्षित अवस्था में भी जीवन गुजारने की वह स्थिति में होता है। ऊर्ध्व शैवधाम में स्थित होना ही जीवन का लक्ष्य है वह केवल निर्बीज दीक्षा से पूर्ण होता है। दूसरे प्रकार की सबीज दीक्षा में भोग की इच्छा अभी विद्यमान होती है। यह साक्षात् बन्धन से छुटकारा देने वाली नहीं होती। इससे साधक की साधना में बाधा आ जाती है। अतः यह कहा है कि "तत्र संस्कार

सिद्ध्यै या दीक्षा साक्षात् न मोचनी"। अर्थात् संस्कार मात्र की सिद्धि के लिए जो दीक्षा प्रदान की जाती है वह बन्धनों से मुक्ति देने वाली नहीं होती है। यहां सबीजदीक्षा की ओर ही संकेत किया है। 'सुमनाः' नामक रुद्र की उपासना से निर्बीज दीक्षा की प्राप्ति होती है अतः यह रुद्र 'शरणागतों की रक्षा करते हैं इसीलिए कहा है कि 'प्रपन्नजनमोचने' इस प्रकार शेषवृत्ति की स्थिति में साधक 'सुमनाः' नामक रुद्र के मन्त्राक्षर 'म' की साधना से सुअवस्थित रहता है।

जिस "सुमनाः" नामक रुद्र की इच्छा से निरन्तर शिवार्चना में शिवरूप होके साधक संपूर्ण रूप से विश्वात्मभाव में रंगकर शरणागतों का उद्धार करने में दत्त चित्त हो जाता है उस रुद्र की जय जयकार हो॥

MALINI - Quarterly Magazine

Annual Subscription : Rs.100.00

Price Per Copy : Rs.25.00

Overseas Subscription : US$25.00

All correspondence & subsciption must be sent to the Administrative Office :

Ishwar Ashram Bhawan
2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 002.
Tel. : 553179, 555755

Information regarding printing & publishing, etc. can be had from Branch Office:

F-115, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044
Phone : 6943307

ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Srinagar Ashram:
Ishber Nishat.
P.O. Brain.
Srinagar (Kashmir) - 190 021
Tel. : 0194-461657

Jammu Ashram:
2, Mohinder Nagar.
Canal Road.
Jammu (Tawi) - 180 002
Tel. : 0191-553179, 555755

Delhi Ashram:
R-5, Pocket 'D'.
Sarita Vihar.
New Delhi - 110 004
Tel.: 011-6958308, 6943307

No : IAT/873-61/Adm/2001

Place : Jammu
Date : 9 December, 2001

Resolution

I

The devotees/desciples including Trust members (present) assembled after Sunday prayers in the Ashram premises today to condole the death of Shri Shamboo Nath Ji Warikoo, a very close disciple of Swami Ji Maharaj, on 4th December, 2001 at Jammu.

The assembly prayed to Gurudev to shower Bliss to the departed soul and give enough courage to his children to bear this loss. Gurudev may also guide them to follow the footsteps of their faher.

May his soul live in peace in the region of light and truth in which it has stepped in.

The assembly desired that these sentiments be conveyed to the concerned.

II

The devotees and the members of the Trust (Present) assembled in the Ashram premises today to condole the death of the father of Sh. Nain Ji Koul, an ardent disciple of beloved Gurudev, in the recent past.

The assembly prayed to Gurudev to shower Bliss to the departed soul. May his soul rest in peace.

III

The devotees, disciples and one of the Trust members attended the meeting in the Ashram premises today to mourn the death of Shrimati Laba Kak Ji Langoo, better known to ashramites as Deviki ji, a very close devotee of Gurudev Swami Lakshman Joo Maharaj.

The gathering prayed to Swami Ji Maharaj to shower peace and Bliss to her soul and give enough courage to the family to bear this loss. May her soul live in peace in the region of light and the Truth in which it has stepped in.

It was desired that these sentiments be conveyed to the concerned.

IV

The devotees/disciples and the members of the Trust, met today after Sunday Pooja in the Ashram premises to mourn the death of Shri Pran Nath Malls who was a most devoted disciple of Gurudev Swami Lakshman Joo Maharaj.

The gathering on being informed about the death of Shri Malla on the 26th of the current month at Panchkola, Haryana, observed silence for two minutes and prayed to Gurudev that He may shower His bliss to the departed soul and provide enough courage to his Mrs. Smt. Nirmala Ji, also a close disciple of Swami Ji Maharaj, and the berieved family.

Also prayed that the departed soul may live in peace in the region of light and truth in which it has stepped in.

Sd/-
Secretary Trustee
Ishwar Ashram Trust,

Date 30.12.2001

(Somnath Saproo)

Similar Condolence meetings were held at Srinagar and Delhi Ashram on the above said dates and the role of departed souls was hailed.